Payal Yadav
payal.sbalaji.yadav9@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा
# डेविएंस इन क्लासरूम्स
# डी.एच. हरग्रेअवेस, एस. के. हेस्टर एंड एफ.जे. मेल्लोर
# रूटलेज एंड केगन पॉल लिमिटेड, लन्दन

थ्योरी व शिक्षण के दोहरे उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए 1975 में प्रकाशित यह पुस्तक, एक शोध प्रोजेक्ट के आधार पर लिखी गई है। यह पुस्तक पहला ऐसा प्रयास है जिसमे लेबलिंग थ्योरी को कक्षायी विसामान्यताओं के आलोक में समझने का प्रयास किया गया है। लेबलिंग थ्योरी मानती है कि किसी व्यक्ति की क्रिया को 'विसामान्य' होने का लेबल देना, उस व्यक्ति विशेष को विसामान्य व्यवहार में संलग्न होने के लिए प्रेरित करता है। कक्षायी विसामान्यताओं को समझाने के साथसाथ यह पुस्तक, यह भी विवेचना करती है कि अपनी स्वयं की शोध प्रक्रिया पर दृष्टि डालना और क्षेत्र से थ्योरी का निर्माण करना कितना प्रासंगिक है। पुस्तक का प्रस्थान बिंदु लेबलिंग थ्योरी है जो कक्षा में विद्यार्थियों के व्यवहार एवं अस्मिता को, उनके लिए प्रयुक्त लेबल्स के सापेक्ष देखती है। शिक्षकों द्वारा कक्षायी संदर्भो को सामान्य मान लेने की प्रवर्ती को चुनौती देते हुए यह पुस्तक व्यष्टिगत स्तर पर कक्षायी प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने का प्रयास करती है।

प्रस्तुत पुस्तक दो प्रकार के पाठकों को ध्यान में रखते हुए लिखी गई है। पहला सामाजिक-वैज्ञानिक और दूसरा शिक्षक| पहले पाठकों को ध्यान में रखते हुए एक उपयुक्त संकल्पनात्मक रुपरेखा विकसित करने का प्रयास किया गया है| वही दूसरे पाठकों की सहायता के लिए स्कूली जीवन की रोजमर्रा की समस्याओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है| अल्फ्रेड स्चुत्ज़, हेरोल्ड गर्फिन्केलव आरोन सिकॉउरेल आदि के महत्वपूर्ण संदर्भो के आधार पर यह पुस्तक नृजातीय-कार्यप्रणाली और घटनाविज्ञान परम्पराओं के अंतर्गत लिखी गई है।

१९७२ में इंग्लैंड के दो स्कूलों में किए गए केस अध्ययन के द्वारा लेखक, स्कूल में नियमों की प्रकृति, अध्यापकों द्वारा विसामान्यताओं का आरोपण, कैसे कुछ विशिष्ट क्रियाओं, व्यवहारों को विसामान्यताओं की श्रेणी में लाया जाता है? आदि पक्षों का अध्ययन करते है। डाटा एकत्रीकरण के लिए सहभागी अवलोकन, मुक्त साक्षात्कार का प्रयोग किया गया है। दोनों स्कूलों के अध्यापकों, विद्यार्थियों के केस अध्ययन एवं उनकी प्रतिक्रियाओं से प्राप्त आंकड़ों का, विश्लेषण किया गया है।

पहला अध्याय बताता है कि कैसे १९६० का दशक सामाजिक विज्ञान में विभिन्न रुपावलियों (पैराडाइमों) के बीच विवाद का दौर रहा। यह विवाद दो विचारधाराओं में विभाजित था- पहली प्रत्यक्षवाद की विचारधारा, जो मानती है कि सामाजिक विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान के मॉडल पर आधारित है। वही दूसरी विचारधारा नृजातीय कार्यप्रणाली व घटनाविज्ञान की है, जो प्राकृतिक विज्ञान की वस्तुनिष्ठता से अलग सामाजिक विज्ञान को आत्मनिष्ठ और व्यक्तिगत अनुभवों के अलोक में समझने का प्रयास करती है। इस पुस्तक में दूसरी विचारधारा का समर्थन किया गया है। साथ ही लेबलिंग विचारकों व सिंबॉलिक इंटरएक्शनिस्म दोनों ही पक्षों की आलोचना की गई है।

दूसरा अध्याय विवेचना करता है किलेबलिंग थ्योरी को स्कूली विसामान्यताओं से जोड़कर देखने के सन्दर्भ में कोई महत्वपूर्ण आनुभाविक अध्ययन नहीं हुआ है|

विसामान्यताओं को लेकर मुख्य दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक, क्लिनिकल और मनोमितीय रहा है। अध्याय की शुरुआत में कुछ लेखों/संदर्भो का जिक्र है जिनसे लेखकों के विचार प्रभावित हुए जैसे – सिकॉउरेल (१९६८), किटुसे (१९६२), कार्ल वेर्थ्मन (१९६३) आदि।इसके बाद विस्तारपूर्वक यह विवेचना की गई है कि कैसे और किन सन्दर्भों में इस शोध प्रोजेक्ट की शुरुआत हुई थी। साथ ही साथ शोध प्रोजेक्ट के प्रश्नों, शोध उद्देश्यों, शोध की आवश्यकता आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। लेखक यह स्पष्ट करते है कि विधिगत विसामान्यताओं और स्कूली व कक्षायी विसामान्यताओं में मौलिक तौर पर अंतर है। जैसे विधिगत प्रणाली में उत्पन्न विसामान्यताओं के लिए नियम औपचारिक, पूर्णतः स्पष्ट एवं परिभाषित होते है। न्यायविचार की पूरी प्रक्रिया लम्बी और जटिल होती है। वही दूसरी और स्कूली सन्दर्भ में विसामान्यताओं के लिए निर्धारित नियम पूर्णतः परिभाषित नहीं होते है। साथ ही ये नियम लोचशील और तुलनात्मक रूप से कम जटिल भी होते है।

लेबलिंग थ्योरी के अंतर्गत दो मुख्य संकल्पनाएं है- नियम और लेबल। तीसरे अध्याय में स्कूल में नियमों की क्या प्रकृति है? इस पहलू पर चर्चा की गई है। आपराधिक मॉडल से अलग स्कूल के नियम पूरी तरह लिखे हुए या कोडीफाइड नहीं होते है। इनकी प्रकृति लिखित या मौखिक दोनों प्रकार की हो सकती है। स्कूल के सन्दर्भ में तीन प्रकार के नियमों की चर्चा की गई है – संस्थागत, स्थितिजन्य और व्यक्तिगत नियम| प्राप्त आंकड़ों के आधार पर कक्षायी नियमों को पांच थीमें के तहत समझने का प्रयास किया गया है- बातचीत, गतिशीलता, शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्ध, विद्यार्थी-विद्यार्थी सम्बन्ध और समय। अध्याय का निष्कर्ष यह निकलता है कि नियमों को सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है| स्कूली अनुभवों को हमें ज्यों का त्यों नहीं लेना चाहिए बल्कि हमें विभिन्न पहलुओं को समस्यात्मक मानना होगा और विवेचना करनी होगी।

अगला अध्याय पिछले अध्याय के सापेक्ष स्कूल विशिष्ट के सन्दर्भों में कक्षा की विभिन्न प्रक्रियाओं को समझाने का प्रयास करता है। शिक्षण की प्रक्रिया में कौन-कौन सी अवस्थाएं होती है ? शिक्षार्थियों-विद्यार्थियों के सम्बन्ध, विद्यार्थियों-विद्यार्थियों के संबंधों की प्रकृति क्या है? आदि प्रक्रियाओं का उदाहरण व अवलोकन के बिन्दुओं से विस्तृत वर्णन किया गया है। एक महत्वपूर्ण बिंदु जो इस अध्याय में उठाया गया है वह है कि कैसे कोई क्रिया शुद्धतः विसामान्यताओं की श्रेणी में रख दी जाती है ?

पांचवे अध्याय में यह चर्चा की गई है कि कैसे पहचानें की कोई क्रिया विसामान्य है ? अध्यापकों के द्वारा किए गए विश्लेषणों के आधार पर यह बताया गया है कि कैसे वे विसामान्यताओं का आरोपण करते है ? इस क्रिया में अध्यापक अपने सामान्य ज्ञान का प्रयोग यह सम्बन्ध बनाने में करते हैं कि अमुक विद्यार्थी एक विशिष्ट प्रकार का विद्यार्थी है। उदाहरण के तौर पर यदि कक्षा में एक विद्यार्थी खिड़की की तरफ देख रहा है, अपने सहपाठी की ओर देख रहा है या नीचे देख रहा है तो इसका मतलब है कि उसका ध्यान पढ़ाई में और अध्यापक की बातों की तरफ़ नहीं है। यहाँ अध्यापक अपने सामान्य ज्ञान से यह मान लेता है कि क्योंकि विद्यार्थी एक समय में दो चीजों पर ध्यान नहीं दे सकता, इसलिए अगर उसका ध्यान कहीं और है तो उसका ध्यान कक्षा में नहीं है।

अगले अध्याय में बताया गया है कि कैसे अध्यापक, विद्यार्थियों को विभिन्न कोटियों में बांटते है। कैसे कोई कर्ता विसामान्य व्यक्ति बनता है? विसामान्य क्रिया और विसामान्य व्यक्ति के मध्य क्या सम्बन्ध है ? लेबलिंग थ्योरी के अनुसार किसी विशिष्ट तरीके से लेबल करना या नाम रखना, विद्यार्थियों के लिए विशिष्ट परिणाम उत्पन्न करता है। प्ररूप निर्धारण (टाइपिंग) थ्योरी के तहत विद्यार्थियों को तीन अवस्थाओं के माध्यम से श्रेणीकृत किया जाता है। पहली अवस्थापरिकल्पना की है, जो उस समय शुरू होती है जब शिक्षक विद्यार्थी से पहली बार मिलता है। दूसरीअवस्था विस्तारण की है, जो बीच कि अवस्था है और इसमें शिक्षक विद्यार्थी के व्यवहार को समझने की प्रक्रिया में होता है। तीसरी अवस्था स्थिरीकरण की है, जिसमे अध्यापक के पास विद्यार्थियों की अस्मिता को लेकर एक स्पष्ट व स्थिर समझ विकसित हो जाती है।

पिछले अध्याय के अलोक में अगले अध्याय में श्रेणीकरण की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। दोनों स्कूलों में किए गए केस-अध्ययनों के माध्यम से बताया गया है कि कैसे अध्यापक के दृष्टिकोण में विसामान्य विद्यार्थियों की एक स्थिर अस्मिता बनती है। केस अध्ययनों के द्वारा यह निकलकर आता है कि स्थिरीकरण की प्रक्रिया अपने आप में बहुत ही जटिल है। प्रत्येक श्रेणीकरण और हर एक विसामान्य विद्यार्थी के अपने कुछ विशिष्ट लक्षण होते है।

आठवें अध्याय में यह चर्चा कि गई है कि विसामान्य विद्यार्थियों की पहचान के पश्चात् उनके प्रति किस तरह की प्रतिक्रियाएं अध्यापकों की होती है ? एक बहुत ही सामान्य सी प्रतिक्रियां उपचार के तौर पर होती है जो विसामान्य विद्यार्थी और उपचार के तरीकों के बीच में एक यांत्रिक सा सम्बन्ध बैठा देती है। लेखक इस प्रतिक्रियां की आलोचना करते है और मानते है कि वही नियम मान्य होने चाहिए जो सन्दर्भ के अनुरूप सहायक हों।

अंतिम अध्याय सामाजिक-वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों के लिए कुछ निहितार्थ प्रस्तुत करता है| इस पुस्तक में प्रस्तुत शोध विसामान्य अध्ययन के क्षेत्र में एक योगदान है, विशेषकर कक्षायी सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय साहित्यों में विसामान्यताओं को लेकर जो चर्चा होती है वह बताती है कि क्यों कुछ विद्यार्थी विसामान्य होते है? लेकिन ऐसे साहित्य शिक्षकों को कोई व्यवहारिक सहायता प्रदान नहीं कर पाते है| ठीक इसके विपरीत इस पुस्तक की विषय सामग्री विसामान्यताओं को लेकर कोई रामबाण उपलब्ध नहीं कराती है बल्कि मानती है कि विसामान्यता स्कूल के सामाजिक जीवन का एक स्वाभाविक सा हिस्सा है। इस प्रकार यह पुस्तक विसामान्यताओं को लेकर बने पूर्वाग्रहों का खंडन करती है।

साथ ही साथ पुस्तक में जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है वह विसामान्यताओं को कम करने के कुछ तरीके विकसित करने में सहायक हो सकता है। इस तरह के तरीके सामाजिकवैज्ञानिकों(वर्णन के स्तर पर) और शिक्षाविदों (सुझाव, कुछ हल देने के स्तर पर), दोनों के लिए ही उपयोगी है। इंग्लैंड के सन्दर्भों में लिखी गई यह पुस्तक भारतीय शिक्षाविदों एवं विद्यार्थियों के लिए भी विशेष महत्व रखती है। उदाहरण के तौर पर वर्तमान समय में विद्यार्थियों में बढ़ती अनुशासनहीनता न केवल शिक्षकों के लिए बल्कि सम्पूर्ण शैक्षणिक परिदृश्य में एक पेचिदा मसला बन चुकी है। ऐसे में यह समझना आवश्यक हो जाता है कि किन प्रक्रियाओं से होते हुए अनुशासनहीनता का यह मुद्दा उभर रहा है ? इस पुस्तक की शोध प्राविधि की तर्ज पर व्यष्टिगत शोध के माध्यम से स्कूली जीवन की इन बारीकियों को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

भारतीय स्कूली शिक्षा के सन्दर्भ में यह पुस्तक गहरे सवाल खड़े करती है। जैसे कक्षायी और स्कूली सन्दर्भों में विसामान्यता की परिभाषा एवं अर्थों को किस तरह गढ़ा जाता है? शिक्षकों और स्कूली समुदाय की प्रतिक्रियाओं का विसामान्यता की पूरी संकल्पना पर क्या प्रभाव पड़ता है ? साथ ही साथ इस पुस्तक की विषय सामग्री के आधार पर, विसामान्यता के सरोकारों को न केवल कक्षायी सन्दर्भ में बल्कि वृहत स्कूली अलोक में समझना भी आवश्यक हो जाता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING